International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 54-57

अलका सरावगी के उपन्यास में स्त्री अस्मिता

[1] सुलेखा मिश्रा, [2] आशुतोष कुमार द्विवेदी

[1] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

[2] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

मेरे शोध पत्र का उद्देश्य अलका सरावगी की नारी के प्रति दृष्टि से है। साथ ही उत्तर आधुनिक उपन्यास में नारी की स्थिति को खोजना भी है।

हिन्दी में 'नावेल' के अर्थ में उपन्यास' शब्द का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1875 ई. में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित अपने अपूर्ण रचना 'मालती' के लिए किया था।

उपन्यास साहित्य की एक विधा है। उपन्यास को आधुनिक महाकाव्य कहा गया है। उपन्यास में कई कहानियों, कई घटनाओं का सम्मिश्रण होता है। उपन्यास शब्द का अर्थ है सामने रखना। उपन्यास मानव जीवन का समग्र चित्रण है, इसमें कई प्रासंगिक कथाओं तथा घटनाओं का वर्णन रहता है।

मूल शब्द: अलका सरावगी, उपन्यास, महाकाव्य, स्त्री, अस्मिता

प्रस्तावना

उपन्यास आज की बहुप्रचलित तथा लोकप्रिय विधा है। हिन्दी उपन्यास का आरंभ सामान्य जनजीवन से था। इस तथ्य को कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बाबू देवकी नन्दन खत्री ने तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों की रचना करके पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया। ऐसा कहा जाता है कि देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही बहुत से अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी सीखी। इनके लिखे प्रसिद्ध उपन्यास हैं – चन्द्रकान्ता (1891 ई.), चन्द्रकान्ता सन्तति, काजर की कोठरी, भूतनाथ, कुसुम कुमारी, नरेन्द्र मोहनी, वीरेन्द्र वीर आदि। इन उपन्यासों में घटनाओं का संयोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि पाठक की कुतूहल वृत्ति अंतक तक जाग्रत रहती है और वह अंत तक उपन्यास के जादू में बंधा रहता है। भले ही साहित्यिक दृष्टि से ये उपन्यास उच्चकोटि के न हो, किन्तु पाठकों को बांधने की इनकी शक्ति बेजोड़ है। खत्री जी के उपन्यासों ने पाठकों का भरपूर मनोरंजन किया है।

जासूसी उपन्यासों का शुरुआत करने का श्रेय हिन्दी में गोपालराम गहमरी को दिया जा सकता है। वे अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखक आर्थर कानन डायल से बेहद प्रभावित थे। गहमरी जी के उपन्यासों में प्रमुख है – सरकटी लाश (1900ई.), जासूस की भूल (1901ई.), जासूस पर जासूसी (1904ई.) आदि। इन उपन्यासों ने विशुद्ध मनोरंजन का ही कार्य किया है। मनोरंजन प्रधान उपन्यास प्रारंभ में जरूर लिखे गए परन्तु साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है कि – "केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें भी उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"[1]

मुंशी प्रेमचन्द जी अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। सही अर्थों में उन्होंने ही हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गई थी और जनजीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखना सुलभ हुआ था। अपने महान उपन्यासों के कारण वे वास्तव में 'उपन्यास सम्राट' की पदवी पाने के अधिकारी सिद्ध हुए।

प्रेमचन्द के उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विषयों से संबंधित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचन्द का मूल्यांकन करते हुए लिखा है – "प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के अचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझबूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"[2]

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया। 'सेवासदन' (1918) के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्राप्त हो गई। इस उपन्यास में उन्होंने विवाह से जुड़ी समस्याओं – दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, पत्नी का स्थान आदि को उठाया है। इन्हें प्रस्तुत करने का ढंग पूर्ववर्ती उपन्यासों से एकदम अलग है। 'निर्मला' (1927) में उन्होंने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। कृषक जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण उन्होंने 'गोदान' (1935ई.) में किया जो उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जाता है। समाज में छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता की समस्या को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की नवीनतम् धारा को आधुनिकता बोध का उपन्यास कहा जा सकता है। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यान्त्रिक सभ्यता के परिणाम से आज जीवन में अकेलापन एवं निराशा घर कर गई है। कुण्ठा, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना ने हमें संत्रस्त कर दिया है। बीसवीं सदी के नवें दशक में भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव नारी विमर्श के कारण आया, जिसके कारण नारी ने साहित्य के केन्द्र बिन्दु से होकर मुख्य धारा में अपनी जगह बनायी। हिन्दी कथा साहित्य इससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ। वर्तमान दौर में स्त्री चेतन से जुड़ी स्त्री मुक्ति और अस्मिता के संकट व पहचान के संघर्ष को व्यक्त करने वाली अनेकानेक कथा लेखिकाएँ हैं जिनमें मुख्य रूप से मन्नू भण्डारी ने 'आपका बंटी' में तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का निरूपण किया है। उषा

प्रियंवदा के उपन्यास फुलब्राइट स्कॉलरशिप लेकर अमेरिका चली गई। फिर वहीं बस गईं। वहाँ वे व्यक्तिगत रूप से जिन अनुभवों से गुजरी, उसी को उन्होंने 'रुकोगी नहीं राधिका' (1967), 'शेष यात्रा' और 'अंतर्वशी' उपन्यासों में अभिव्यक्ति किया। 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' में आधुनिकता बोध का गहरा रूप उभरा है।

उपन्यास की तीन लेखिकाओं ने विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है और विशेष चर्चा का विषय बनी है। ये हैं प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा और अलका सरावगी। प्रभा खेतान ने विभिन्न संदर्भों, विभिन्न पृष्ठभूमियों, विभिन्न परिवेशों और विभिन्न संस्कृतियों में नारी–नियति का चित्रण किया है, जिसका सारांश 'छिन्नमस्ता' की प्रिया के शब्दों में यह है – "औरत कहां नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग–ऐश्वर्य के बावजूद पलंग पर रात–रात भर अकेले अकरवटे बदलते हुए हजारों सालों से इनके ये आंसू बहते जा रहे हैं।"[3] इससे मुक्ति का रास्ता क्या है? प्रभा खेतान का उत्तर है स्त्री की आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास में भी स्त्री पात्र विद्रोह करते हैं। उन्होंने बुंदेलखण्ड और ब्रज क्षेत्र के अहीरों, जाटों और कबूतरा जाति का यथार्थ आंचलिक जीवन चित्रित करते हुए इनके समाजों में स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का प्रमाणिक और मार्मिक चित्रण किया है। इन समाजों की अधिकांश स्त्रियां इन अत्याचारों को चुपचाप सहन करती हैं, किन्तु इनमें से कुछ ऐसी भी निकलती है, जो इन अत्याचारों का विरोध करती है और अत्याचारियों से जूझती है। 'इदन्नमम' की मंदाकनी स्त्रियों के लिए निर्मित परिवारिक व सामाजिक बंधनों को तोड़ती है और अत्याचारियों के विरुद्ध खड़ी होती है। 'चाक' की सारंग, 'झूला नट' की शीलो, अत्मा कबूतरी की अल्मा आदि भी विद्रोही और जुझारू स्त्री पात्र हैं।

अलका सरावगी के उपन्यासों ने सबसे अधिक ध्यान अपने चमात्कारिक शिल्प के कारण आकर्षित किया है।

अलका सरावगी का पहला उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' सन् 1998 में प्रकाशित हुआ जिसमें एक मारवाड़ी परिवार की पांच पीढ़ियों की कथा कही गई है, जिसमें प्लासी के युद्ध से लेकर बाबरी मस्जिद के ध्वंश तक की कथा समाहित है। इस उपन्यास में वस्तु अनेक स्तर पर विद्यमान हैं, जिनमें से मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की घुटनभरी विवश अंधेरी जिन्दगी का है, जिसका केन्द्र किशोर बाबू की विधवा भाभी है। मारवाड़ी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी के सफेद साड़ियां पहनने के सिवा और कुछ पहनने का अधिकारी नहीं था। किशोर बाबू की भाभी जब यह सोचकर कि आज तो सब पढ़े–लिखे लोगों की जमात आएगी खुले विचारों वाली आज यह साड़ी पहनने में कोई हर्ज नहीं बिना कनेर की सफेद साड़ियां पहनते–पहनते उकता भी चली है। बहुत प्रसन्न मन से वे साड़ी पहनकर शरमाती हुई कमरे से बाहर निकली तभी किशोर बाबू अपनी रूढ़िगत मानसिकता के कारण यह स्वीकार नहीं कर पाते। वे समाज की दुहाई देकर विधवा नारी को उसी स्थिति में बनाये रखना चाहते हैं – "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी? उम्र बढ़ने के साथ–साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यू.पी. वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक–मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर? कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।"[4] पुरुषसत्तात्मक समाज में एक विधवा स्त्री का अच्छे कपड़े पहने भर से ही मर्यादा खत्म होती है।

अलका सरावगी के इस उपन्यास में रूढ़िवादी समाज की कथा ही नहीं है, इसमें भारतीय समाज की विसंगतियों का वर्णन आज की आधुनिक परिस्थितियों के विपरीत है, सच क्या है? यह किशोर बाबू जानते हैं। किशोर बाबू स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति जागरुक तो हैं किन्तु सामाजिक बेड़िया उन्हें पुरातनता के खोल में लौट जाने पर विवश कर देती है। किशोर बाबू एक तरफ तो यह सोचते हैं कि हमारे घर की महिलाएं कितनी विवश और परतंत्र है। सारा दिन घरों में बंद रहती है, उन्हें कहीं बाजार भी जाना होता है तो वे गर्दन तक घूंघट करके ही बाहर निकल पाती हैं, लेकिन उनकी यह सोच तब बदल जाती है जब अपनी विधवा भाभी को बिना किनारे की सफेद साड़ी के जगह पर गुलाबी पाड़ के रंग की साड़ी पहने हुए देखते हैं। यह भारतीय मध्यमवर्गीय समाज का दिखावा है कि वह आधुनिक तो बनना चाहता है किन्तु समाज की बनाई रूढ़ियों के दायरे में रहकर। यही वजह कि किशोर बाबू को इस बात का अहसास भी नहीं होता कि उन्होंने हर मौके–बेमौके यह प्रमाणित करने की कोशिश की कि भाभी अब 'आउटडेटेड' होकर सठिया गई हैं और उनका दिमाक पूरी तरह काम नहीं करता। लेखिका ने एक विशेष बात यह दिखाई है कि युवावस्था में रूढ़ियों से लड़ने का जो उत्साह होता है, प्रौढ़ होने पर वह अपने पूर्वजों के बनाये रास्ते पर ही चलना पसन्द करता है। इसीलिये जब किशोर बाबू बीती घटनाओं का विश्लेषण करते हैं तो अपने हर कृत्य को सही ठहराने का उपक्रम करते हैं। भले ही इसके लिए उन्हें कुतर्कों का सहारा क्यों न लेना पड़े – "किशोर बाबू आज पीछे पलटकर देखते हैं, तो उन्हें नहीं लगता कि उन्होंने कोई गलती की। एक से एक किस्से मालूम हैं। उन्हें लोगों के वे कदम फूंक–फूंक कर धरते रहे, तो इसमें क्या गलत था? आखिर रूपन देवल कितनी भी बड़ी अधिकार क्यों न हों गई हो, पर रही तो औरत की जात ही न?"[5]

बंगाल (कलकत्ता) में रहते हुए किशोर बाबू को मारवाड़ी समाज की स्त्रियों की पिछड़ी स्थिति पर शर्म महसूस होती है। अपने समाज की रूढ़ियों, घूंघट प्रथा, नाक छिदवाना आदि का विरोध करते हैं। किशोर बाबू अपने लड़कियों को पढ़ाने का फैसला लेते हैं। अपनी सारी लड़कियों को कॉलेज भी भेजा–यह बात अलग है कि उनमें से दो ने ही बी.ए. पास किया बाकी सबकी बीच में शादी हो गई। उन्हें पढ़ाया–लिखाया, पर लड़कियों को रखा हमेशा एक सीमा में ही। किशोर बाबू का मानना है कि – "पिंजरे के पक्षी को जन्म से ही पिंजरे में रखा जाए, तो कष्ट नहीं मानता। पर एक बार खुले आकाश में छोड़कर पिंजरे में बंद कर दें, तो वह अपना खाना–पीना छोड़ देता है। आखिर लड़कियों को पराए घर जाना है, घर–गृहस्थी संभालनी है। ज्यादा पर निकाल लिए, तो मुसीबत हो जाएगी।"[6] किशोर बाबू लड़कियों के ज्यादा पढ़ने का भी विरोध करते हैं – "ज्यादा पढ़ लेती तो ज्यादा पढ़े–लिखे लड़के की जरूरत होती। आखिर संभालनी तो घर गृहस्थी ही है लड़कियों को कोई हुंडी का भुगतान थोड़ी ही करना है।"[7] बदलते वक्त के कारण किशोर बाबू भी अपनी पत्नी में स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं किन्तु उनकी सारी चेष्टाओं के बावजूद उनकी पत्नी के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया। इसका कारण वे स्वयं को स्वीकार करते हैं कि – "इसलिए कि तुमने मेरी नकेल हमेशा अपने हाथों में कसकर पकड़े रखी। कभी अपने आप कोई निर्णय नहीं लेने दिया चाहे कितनी मामूली से मामूली बात क्यों न हो।" वे हमेशा अपनी पत्नी को चाबी की गुड़िया की तरह चलाते रहे। अपनी पत्नी की काबिलियत पर कभी भरोषा नहीं किया। मनुष्य की समस्या यही है कि वह किसी बने बनाए सिद्धांत पर जीवनपर्यन्त नहीं चल सकता। कई बार निजी स्वार्थों के कारण उसके सिद्धांत बदलते रहते हैं। यह मानव मन की प्रवृत्ति है, इसे जो चाहे नाम दो लेकिन सच यही है कि इसी से मनुष्य में मनुष्यता रहती है और वह भगवान से दूरी बनाए रखता है। किशोर बाबू के परिवार द्वारा बनाए गए सिद्धांत में से कुछ स्वयं किशोर बाबू तोड़ते हैं, कुछ को समय के साथ टूटता देखकर आश्चर्य चकित होते हैं, उनके दिल की बाइपास सर्जरी उनके परिवार के सिद्धांतों से भी उन्हें बाइपास करा देती है। इन अर्थों में यह एक सामान्य चिकित्सा की शब्दक्रिया का प्रतीकात्मक

अर्थ देने लगती है और तब कथा के प्रारंभ में लैंस–डाउन रोड पर घूमने वाला आदमी, जो सिर पर चोट लगने से पागल हो गया तथा बाइपास के बाद चोट लगने के कारण सिर के पिछले हिस्से में भयंकर दर्द से व्यथित किशोर बाबू में कोई अंतर नहीं रह जाता। बाइपास से एक अत्यधिक महत्वपूर्ण रुचिकर यह भी है कि वर्षों से सारी दुनिया समस्याओं के तत्कालिक समाधान को अपना उद्देश्य मान बैठी है। समस्या की जड़ पर अघात करके उसे पूरा नष्ट करने की ओर उसकी दृष्टि प्रायः जाती ही नहीं, सभी समस्याओं की जड़ इसी में है। इस सन्दर्भ में समस्या के पथ को बंद कर नया पथ खोल लेना समस्या को सरल बनाने से अधिक और कुछ नहीं प्रतीत होता। इसीलिये उपन्यास के अंतिम भाग में शांतनु किशोर से कहता है – "देखो, एक रास्ता जाम होता था, तो हम दूसरा बना लेते थे। हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूँढ़ते रहे पर अब तो कोई बाइपास काम नहीं कर सकता।"[8] इस प्रश्न के बहाने लेखिका कुछ जरूरी बातों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, चाहे व्यक्ति विशेष हो या सरकारी समझ, यह समस्या सर्वत्र विद्यमान है। भेड़चाल हमारी आदत में शुभार हो गया है, हम किसी भी समस्या का समाधान या तो पश्चिमी मॉडल में खोजने के अभ्यस्त हैं या फिर शार्टकट इलाज के माध्यम से उस समस्या को कुछ दिनों के लिए हाशिये पर रख देने के हामी हैं। इस संदर्भ में लेखिका का यह सवाल अत्यधिक उपर्युक्त बन जाता है कि जब बाइपास के सारे रास्ते, नलियां बंद हो जायेगी उस समय तुम क्या करोगे? राजनैतिक सत्ता द्वारा लागू किये गये सोवियत मॉडल के विफल होने के बाद भूमंडलीकरण के पूँजीवादी मॉडल और तथाकथित उत्तर आधुनिक परिवेश में बदलते मूल्यों के बहाने लेखिका अगाह करती है कि यदि हम अपनी जरूरतों के मुताबिक मॉडल विकसित न कर सके तो इस शरीर को बचाने के लिए कोई मॉडल रूपी दवा काम नहीं करेगी और वह दिन सर्वाधिक भयावह होगा। कहा जा सकता है कि यह उपन्यास बाइपास के स्थान पर 'सीधा' पास की जरूरत पर जोर देता और उन परम्परिक मूल्यों के संघर्ष, विचारों तथा रूढ़ियों की जांच करता है।

अलका सरावगी का 'एक ब्रेक के बाद' (2008) उपन्यास में कार्पोरेट दुनिया के स्त्री चरित्रों का चित्रण अपने आप में स्त्री–विमर्श को नई दिशा देता है। इस उपन्यास में भट्ट और उसकी पत्नी के माध्यम से अलका सरावगी स्त्री के सहने के शक्ति पर प्रकाश डालती है – "भट्ट जानता था कि उसकी पत्नी उससे वह सवाल नहीं पूछेगी जो हर घड़ी पूछना चाहती थी – और कितना दुख दोगे मुझे? या फिर और कितना भटकोगे और भटकाओगे इस तरह?"[9] इसीलिए भट्ट सोचता है कि – "सचमुच, मेरा भारत महान है क्योंकि यहाँ ऐसी पत्नियां मिलती हैं।" भट्ट सोचता है कि – "वह अपनी पत्नी पर कभी उस तरह तानाशाही नहीं चलाएगा जिस तरह दुनिया में पिता जी जैसे तमाम पति अपनी पत्नियों पर चलाते आए हैं और रहेंगे।" इस उपन्यास के अन्य पात्र के.वी. की पत्नी 'सोशल वेलफेयर होम' के सिलसिले में बंगाल के मुख्यमंत्री तक सम्मान ले चुकी थी। पढ़ी–लिखी महिला थी। खुद के.वी. ने किसी जमाने में उनकी बोलने और समझने की प्रतिभा पर रीझकर उनके प्रेम में पड़े थे। लेकिन के.वी. अपनी रूढ़िगत सोच से उभर नहीं पाता – "के. वी. की पत्नी ने इन दिनों ध्यान दिया था कि के.वी. उन्हें जब भी कोई नई बात समझाते हैं, इस तरह बोलते हैं जैसे वे कोई अनपढ़ गंवार महिला हो। यहाँ तक कि के.वी. ने अपने बेटे को भी उनके इसी तरह बात करना सिखा दिया था। वह छोटा सा लड़का भी कुछ पूछने पर उनसे ऐसे बात करता था, जैसे वे दसवीं फेल हों और उनमें कुछ भी समझने की योग्यता न हो। के.वी. का छुपा हुआ ब्राह्मणत्व यानी दूसरों से ऊँचा होने का अहंकार उनके बेटे पर सौ प्रतिशत हावी हो जायेगा। इसकी के.वी. की पत्नी ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। के.वी. की पत्नी सोचती भी है – "इन पुरुषों का अहंकार कभी कम होने वाला नहीं है। दुनिया की इन्हीं लोगों के कारण यह हालत है। सारे लड़ाई–झगड़े खत्म हो जाएं, अगर ये लोग अपने को उतना ही काबिल समझने लग जाएं जितने की असल में हैं।"[10]

अलका सरावगी की विशेषता यह है कि वे स्त्री की प्रचारित और प्रचलित छवि को तोड़ती है। अलका सरावगी अपने उपन्यासों के माध्यम से पुरुषों के द्वारा स्त्री पर किये गये शोषण के साथ स्त्री जीवन के अन्य पक्षों पर भी सोचने के लिए मजबूर करती है जिससे उनके उपन्यास स्त्री जीवन की समस्याओं को उकेरने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाते हैं।

अलका सरावगी का 'कोई बात नहीं' (2004) उपन्यास मोटे तौर पर शारीरिक रूप से अक्षम एक बेटे शशांक और उसकी माँ के प्रेम और दुख की साझीदारी की कहानी है। शशांक का जीवन कई तरह की कथाओं से घिरा हुआ है। शशांक के जीवन की कथाओं के माध्यम से अलका सरावगी शशांक की माँ, मौसी, दादी आदि स्त्रियों की जिन्दगी की कहानियां कहती हुई समाज में स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डालती है। अलका जी का यह उपन्यास जैसे एक मंत्र है – हार न मानने की जिद और नई शुरुआतों के नाम। समय के एक ऐसे दौर में जब प्रतियोगिता जीवन का परम मूल्य है और सारे निर्णय ताकतवर और समर्थ के हाथ में हैं, वेदना, जिजीविषा और सहयोग का यह आख्यान ऐसे तमाम मूल्यों का प्रत्याख्यान है। दहेज की समस्या नारी जीवन में हमेशा से रही है। शशांक की दादी बताती है कि सर्वगुण सम्पन्न होने के बावजूद भी उनका विवाह दहेज की वजह से बहुत मुश्किल से होता है – "उस जमाने में बिना माँ की बेटी का ब्याह होना कोई आसान था? माँ के बिना कौन दहेज–दायजा देता? शादी के बाद कौन लाड़–चाव करता? तिस पर मेरे कोई भाई नहीं लड़की के ब्याह में बहन को चुनड़ी उढ़ाने के लिए भाई तो चाहिए। माँ–बाप के बाद तो पीहर भाइयों से ही होता है।"[11] इसीलिए शशांक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है कि – "लड़की की शादी के समय बीस साल बाद उसके बच्चों की शादी के वक्त चूनड़ी उढ़ाने के लिए भाई की भी चिंता उसी समय कर ली जाती है?" शशांक की दादी का विवाह पन्द्रह साल की उम्र में एक रूढ़िवादी परिवार में हुआ जहाँ उन्हें अपने कमरे में जाने के लिए सास–ससुर के कमरे से होकर जाना होता था। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने कमरे में जाने के लिए भी किसी के साथ की जरूरत थी। बड़ों के सामने मुँह खोलना उस जमाने में कोई सोच भी नहीं सकता था। शशांक की दादी उसे बताती है कि – "बंगाल में कोई अपनी लड़की का नाम सीता नहीं रखता। जनकनंदनी सीता ने सारा जीवन दुख ही दुख जो देखा था लेकिन मेरी माँ ने मेरा नाम पता नहीं क्या सोचकर सीता रख दिया।"[12] दादी अपने जीवन के माध्यम से स्त्री जीवन के सच को बताती है। औरत की परिवार में स्थिति को बताते हुए अलका सरावगी ने लिखा है – "औरत की जिन्दगी भी क्या है? सचमुच। बीस साल भी वह पराए घर की ही रहती है। यहाँ तक कि अपने बच्चों की नजर में भी।"

अलका सरावगी के दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में लेखिका जहाँ एक ओर स्त्री मन के कोमल भावनाओं को अभिव्यक्ति करती है, वहीं पूर्ण संवेदना तथा साहस से स्त्री शोषण की विभीषिका को भी उद्घाटित करती है।

'शेष कादम्बरी' के माध्यम से अलका सरावगी ने तीन पीढ़ियों के द्वारा स्त्री जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ रूप ही सामने नहीं रखा है। अबला कही जाने वाले औरत के सशक्त व जुझारू व्यक्तित्व को भी दर्शाया है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र – "रूबी दी की स्मृतियों, सपनों, कादम्बरी से फोन पर की गई बातचीत,

उसके पात्रों आदि के माध्यम से कही गई 'शेष कादम्बरी' की कथा का केन्द्र भी नारी उत्पीड़न है।"[13] रूबी दी के माध्यम से कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में स्त्री की स्थिति और भारतीय परिदृश्य में नारी जागृति के ऐतिहासिक विवेचना को देखा जा सकता है। रूबी दी उपन्यास में एक ऐसे पात्र के रूप में उपस्थित है जो न पुरुष शासन से शोषित है, न किसी से दमित जीवन जीती है, वह स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीती है। रूबी के माध्यम से अलका सरावगी ने स्त्री से जुड़े प्रश्नों को उभारा है, स्त्री के जीवन की नियति की ओर संकेत करते हुए लिखा है – "ऐ औरत तूने जब भी किसी कोने में पुरुष से अलग अपना कुछ बनाया है तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है।

निष्कर्ष

इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज का सच अनेक रूपों में सामने आता है। रूबी दी की दुनिया का सच हमारे समाज का सच सिद्ध होता है – "क्यों नहीं सोचा कि सुधारक आप लड़के के ब्याह करते समय हो सकते हैं, लड़की का ब्याह करते समय नहीं। आप दुनिया की रस्मों को न मानकर अपने को दुनिया से अलग और ऊपर समझ सकते हैं, पर उसमें आप दुनिया से बच नहीं सकते।" रूबी दी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण एक प्रेरणादायी व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है। जीवन में तमाम तरह की तकलीफों, कष्टों व अकेलेपन को झेलती हुई वे मानती हैं कि जीवन है तो उसका कोई अर्थ है जरूर, समझ में आए या न आए। उसे अपने मन में खत्म करना कभी सही नहीं हो सकता। उपन्यास के अन्य पात्र सविता, माया बोस, फरहा, कादम्बरी आदि स्त्री के अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाने और साथ ही स्त्री के यथार्थ की आवाज बुलन्द करने में सक्षम हैं। समय के साथ स्त्री सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति में आए बदलाव को लेखिका ने बरीकी से पकड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत भारती, संस्करण 1912ई., मैथिलीशरण गुप्त.
2. प्रतियोगिता साहित्य सिरीज (हिन्दी), पृष्ठ 250, डॉ. अशोक तिवारी.
3. हिन्दी सहित्य का इतिहास, पृष्ठ 724, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र.
4. कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ 61, अलका सरावगी.
5. कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ 201, अलका सरावगी.
6. कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ 158, अलका सरावगी.
7. कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ 158, अलका सरावगी.
8. कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ 215, अलका सरावगी.
9. एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ 75, अलका सरावगी.
10. एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ 168, अलका सरावगी.
11. कोई बात नहीं, पृष्ठ 36, अलका सरावगी.
12. कोई बात नहीं, पृष्ठ 34, अलका सरावगी.
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 724, संपादक डॉ. नगेन्द्र.